THE HINDU

Date: 04-07-24

Avoidable tragedy

Gatherings should be tightly regulated to prevent Hathras-type stampedes.

Editorial

The stampede on Tuesday at a religious congregation at Hathras in western Uttar Pradesh, claiming over 120 lives, is only the latest in a series of such tragedies in the country. There have been at least half-a-dozen such incidents in the last 20-odd years. In this instance, at least a lakh of people flocked to Fulrai village to listen to an address by a preacher Suraj Pal, also known as Narayan Sakar Hari or "Bhole Baba". There are reports that there were over 2.5 lakh participants at the venue, which could accommodate no more than 80,000. The preacher is said to have followers in States such as Madhya Pradesh, Rajasthan and Haryana too. Most of the deceased, mainly women and children, were from the economically vulnerable sections of society, and were in search of spiritual solace. While only a fair investigation can find out the cause for the stampede, the reasons being cited include overcrowding, and the bid by some to collect soil from around the feet of the preacher. Not surprisingly, the responses, particularly from the field-level public health system, have exposed how ill-prepared the Uttar Pradesh administration is. Visuals of bodies lying outside the place of post mortem and of the kin desperate for help, as well as an inadequate number of ambulances and medical staff have become the common features of such tragedies. What has made it worse is the preacher and his aides reportedly leaving the site even as panic-stricken people were dying.

The most tragic aspect, as seen in the past, is that it was all avoidable had there been proactive steps taken by a vigilant administration. Unfortunately, the authorities in many States do not appear to have learnt lessons or made use of the availability of better technology and communication. Apart from stringent action against those responsible, the U.P. administration should ensure a just compensation package, the cost of which has to be borne by the organisers. The tragedy is a classic study in the management of large crowds. The officials concerned should ensure that the organisers have the wherewithal to handle large gatherings of any size. The local authorities and organisers should also conduct a drill ahead of such events. What is more important is that the political executive, the bureaucracy and organisers of any public event should be conscious of the fact that the loss of a life is a tragedy for the person's family. The arrangements for mass functions should be governed by this fact.

दैनिक भास्कर

Date: 04-07-24

तर्क - शास्त्र की परंपरा वाले देश में हम धर्मांध हो रहे हैं ?

संपादकीय

'उद्धरेदात्मनात्मानम ...रिपुरात्मनः' (आप स्वयं ही अपना उद्धार करें, अपना पतन न करें- श्रीमद्भगवद्गीता - 6.5) जिस देश में गीता जैसा ग्रंथ हो, जिसे आध्यात्मिक उन्नयन का संविधान कहा जा सकता है और जो सहज सभी भाषाओं में उपलब्ध हो, वहां तथाकथित बाबाओं की स्वीकार्यता समाज की कुंठित सोच बताती है। विश्वास नहीं होता कि इस महान ग्रंथ और इसकी विषय-वस्तु किसी मानव मष्तिष्क से पैदा हुई होगी । फिर भी हाथरस में भगदड़ का कारण उन सवा लाख लोगों द्वारा 'भोले बाबा' (पूर्व में खुफिया विभाग का सिपाही) के पैरों की धूल माथे पर लगाने की होड़ थी। शायद वे मानते थे कि अगर वे पैरों की धूल माथे पर लगा सकें तो इहलोक ही नहीं परलोक सुधर जाता। हादसे में बचे कुछ लोगों का कहना है कि बाबा को इस घटना का पूर्वानुमान था इसीलिए वो अपने प्रवचन में नाराज दिखाई दिए। क्या हो गया है समाज को ? कितना कुंठित है यह समाज कि बाबा में ईश्वरत्व तलाशने के लिए कह रहा है कि 'बाबा को इसकी जानकारी थी ? यह वह देश है जहां समुन्नत तर्क - शास्त्र की परम्परा शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट के शास्त्रार्थ में थी। जहां अध्यात्म को धर्म से सर्वथा अलग कर और फिर धर्म को आध्यात्मिक उन्नयन का साधन मानकर जीवन को निष्काम कर्म के भाव से करने की सलाह दी गई है। ऐसी दुखद घटनाएं सोचने पर विवश करती हैं।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 04-07-24

सतत विकास लक्ष्य

संपादकीय

संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास के 2030 के एजेंडे के एक हिस्से, सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) को प्राप्त करने में छह वर्ष से भी कम समय शेष रह गया है। ऐसे में इसके 17 लक्ष्यों और 169 संबद्ध लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए भारत को अभी बहुत प्रयास करने की आवश्यकता है। इन वैश्विक लक्ष्यों को 2015 में अपनाया गया था और ये गरीबी उन्मूलन, लैंगिक न्याय हासिल करने, पृथ्वी को सुरक्षित रखने तथा सभी के वास्ते शांति और समृद्धि हासिल करने की दिशा में कदम उठाने के लिए एक सार्वजनिक आह्वान हैं। इस संदर्भ में हाल में जारी भारत में एसडीजी की प्रगति रिपोर्ट डेटा आधारित प्रमाण पेश करती है। यह बताती है कि एसडीजी और उससे जुड़े लक्ष्यों को हासिल करने की प्रक्रिया में भारत की प्रगति मिलीजुली रही है। एसडीजी1 के तहत भारत ने हाल के वर्षों में गरीबी उन्मूलन के मामले में बेहतर प्रदर्शन किया है। रिपोर्ट के अनुसार बहुआयामी गरीबी में 9.89 फीसदी की कमी आई और यह 2015-16 से 2019-21 के बीच घटकर 14.96 फीसदी रह गई। नीति आयोग की एक हालिया रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि 2022-23 में यह और गिरकर 11.28 फीसदी रह जाएगी। भविष्य में गरीबी के स्तर में और कमी लाने के लिए निरंतर प्रयासों की आवश्यकता होगी तथा लोगों की खर्च योग्य आय बढ़ानी होगी।

अन्य क्षेत्रों में जीवन स्तर सुधारने के लिए सरकार के निरंतर हस्तक्षेप की आवश्यकता होगी। उदाहरण के लिए रिपोर्ट में इस बात पर जोर दिया गया है कि एक ओर जहां मांओं और बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार हुआ है तथा कुपोषण, मातृ एवं शिशु मृत्यु दर में कमी आई है, वहीं 15 से 49 वर्ष की आयु की महिलाओं तथा पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों में खून की कमी के मामलों में इजाफा हुआ है। एसडीजी 4 यानी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के मामलों में उच्चतर माध्यमिक शिक्षा में नामांकन, व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण में भागीदारी दर, दिव्यांग बच्चों के नामांकन, शिक्षक-छात्र अनुपात और स्कूल बुनियादी ढांचे के मामले में 2015-16 से अब तक काफी सुधार हुआ है। बहरहाल, कक्षा पांचवीं और आठवीं की पढ़ाई पूरी करने वाले बच्चों की तादाद महामारी के पहले के स्तर से नीचे आ गई है। यह बताता है कि महामारी ने अर्थव्यवस्था को किस तरह प्रभावित किया है। इसके अलावा महिला श्रमिकों की भागीदारी बढ़ने के साथ ही वेतन की असमानता, दहेज के मामले और अपराधों की तादाद भी बढ़ी है। इनमें महिलाओं पर यौन अपराध शामिल हैं। ये कारक बताते हैं कि स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक संरक्षण के क्षेत्र में सरकारी व्यय बढ़ाने की आवश्यकता है। बहरहाल, रिपोर्ट में संकेत दिया गया है कि कुल सरकारी व्यय में अनिवार्य सेवाओं पर होने वाला व्यय महामारी के पहले के स्तरों से कम हुआ है।

टिकाऊ और कार्बन निरपेक्ष वृद्धि की तलाश में भारत ने ग्लास्गो में 2021 के कॉन्फ्रेंस ऑफ पार्टीज 26 में यह लक्ष्य तय किया था कि 2070 तक उसे 'नेट जीरो' उत्सर्जन का लक्ष्य हासिल करना होगा। यह रिपोर्ट नवीकरणीय ऊर्जा की बढ़ी हिस्सेदारी और बेहतर औद्योगिक पर्यावरण अनुपालन के साथ सकारात्मक संकेत

देती है। बहरहाल, प्रति व्यक्ति जीवाश्म ईंधन खपत में इजाफा और वन क्षेत्र में इजाफा नहीं होने ने इस प्रगति का प्रतिकार करते हैं। पर्यावरण संरक्षण के लिए आवंटित सरकारी व्यय के अनुपात में भी मामूली सुधार हुआ है। यह 2015-16 से 2022-23 के बीच केवल 0.3 फीसदी बढ़ा है। इससे संकेत मिलता है कि सरकार को और कदम उठाने की आवश्यकता है।

शांति, न्याय और मजबूत संस्थानों से संबंधित एसडीजी16 शांति, प्रभावी शासन और पारदर्शी न्याय व्यवस्था चाहता है। इसके विपरीत रिपोर्ट में बताया गया है कि महिलाओं और बच्चों पर अपराध हर वर्ष बढ़ रहे हैं। भारत प्रति एक लाख आबादी पर 1.93 अदालतों और 1.53 न्यायाधीशों के साथ वैश्विक मानकों से बहुत पीछे है। आंकड़े यह भी बताते हैं कि सूचना के अधिकार के तहत मांगी गई जानकारियों के जवाब देने का प्रतिशत कम हुआ है। कुल मिलाकर जहां भारत स्वस्थ गति से बढ़ रहा है, वहीं वृद्धि के लाभ आबादी के कुछ हिस्सों तक नहीं पहुंच पा रहे हैं। अगर आर्थिक वृद्धि कुछ जगहों पर केंद्रित होगी तो इससे लंबी अवधि में अर्थव्यवस्था की संभावनाओं पर असर होगा। बेहतर होगा कि सरकार आने वाले वर्षों में तय लक्ष्य पाने के लिए उन क्षेत्रों पर जोर दे जहां हम अभी पीछे हैं।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 04-07-24

बाबाओं का मायाजाल

प्रियंका सौरभ

पिछले कुछ दशकों से उभरने वाले किस्म-किस्म के बाबाओं ने राष्ट्र के मुख पर कालिख पोतने का काम किया है। अपनी अनुयायी स्त्रियों के शारीरिक शोषण, हत्या-अपहरण से लेकर अन्य जघन्य अपराध करने वाले बाबाओं का प्रभाव इस कदर बढ़ता जा रहा है कि आज जनता को तो छोड़िए, सदिच्छाओं वाले राजनेता, अभिनेता, अधिकारी, बुद्धिजीवी इत्यादि वर्ग भी उनसे घबराने लगा है। आखिर, इन बाबाओं के महाजाल का समाजशास्त्र क्या है? इसी तरह सवाल यह भी है कि इनके पीछे जनता के भागने का क्या अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान है?

आजकल विभिन्न सामाजिक वगरे में अलग-अलग किस्म के अंधविश्वास प्रचलित हैं। इतने जागरूकता अभियानों के बावजूद आज भी आपको गांव-कस्बों में भूत-प्रेत के किस्से सुनने को मिल जाएंगे। वहीं हायर क्लास के अंधविश्वास अलग हैं। इस क्लास में भी असुरक्षा की भावना कम नहीं है। इस वर्ग के लोग यूं तो अत्याधुनिक होने का दावा करते हैं, लेकिन इसके बावजूद एयरकंडिशंड आश्रमों वाले गुरु ओं के यहां लाखों का

चढ़ावा चढ़ाने से लेकर अपनी सफलता/असफलता की वजह लकी चार्म को मानने से भी गुरेज नहीं करते। ऐसी मान्यताएं भारत ही नहीं, बल्कि विश्व के सभी देशों में पाई जाती हैं।

सवाल उठता है कि समाज में अतार्किक विचारधारा वाले इतने अधिक लोग कहां से आ गए? जवाब है, वह परवरिश और माहौल जो हम अपने बच्चों को देते हैं। शिक्षा व्यवस्था के तहत बच्चों में वैज्ञानिक सोच विकसित करने के उतने प्रयास नहीं हो रहे जितने होने चाहिए। संयुक्त परिवारों का टूटना और नई जीवन शैली का एकाकीपन, यांत्रिकता, तनाव आदि ऐसी स्थिति पैदा कर दी जहां हर व्यक्ति परेशान और बेचैन हो चला है। इन्हीं सामाजिक-मनोवैज्ञनिक स्थितियों के बीच लोग जाने-अनजाने ऐसे बाबाओं की ओर उन्मुख होने लगते हैं, जो लोगों को हर दु:ख-तनाव से छुटकारा दिलाने का दावा करते हैं। लोगों में वहम पैदा कर फायदा उठाने की कला बाजार ने भी सीख ली है।

यही वजह है कि बाजार के जन्म दिए हुए बहुत सारे त्योहार आज परंपरा के नाम पर कुछ दूसरा ही रूप ले चुके हैं। किसी त्योहार पर गहने खरीदने का प्रचलन है तो किसी पर महंगे जानवरों की कुर्बानी देने का। साधारण से रिवाज आज पूरी तरह आर्थिक रंग में रंग चुके हैं। लोग भी इन्हें मानते रहते हैं। बिना महसूस किए कि इससे नुकसान उन्हीं का हो रहा है। छोटे शहरों में आज भी पाखंडी बाबाओं और फकीरों का जाल फैला हुआ है जिनकी नेमप्लेट अक्सर इनके मल्टीटैलेंटेड होने का आभास कराती है। ये अक्सर खुद को ट्रैवल एजेंट (विदेश यात्रा करवाने का दावा), फाइनेंशियल एक्सपर्ट (फंसा हुआ धन निकलवाने का दावा), रिलेशनशिप एक्सपर्ट (प्रेम विवाह करवाने, सौतन से छुटकारा दिलाने का दावा) और मेडिकल एक्सपर्ट (एड्स, कैंसर जैसी बीमारियां ठीक करने का दावा) आदि बताते हैं। कई लोग इनके झांसे में आ भी जाते हैं, और इनका बैंक बैलेंस बढ़ाते हैं।

देश में राजसत्ता-तंत्र अपने सामाजिक-आर्थिक दायित्व निभाने में अपेक्षाकृत पीछे ही रहा। दूसरी ओर, इन बाबाओं द्वारा शिक्षा और स्वास्थ्य से संबंधित कार्य किए जाने लगे। इसके साथ ही भूखों को भोजन से लेकर अन्य सामाजिक कामों में हिस्सेदारी की जाने लगी। इस क्रम में उनकी ओर से समानता का भाव स्थापित करने का काम भी किया जाने लगा। धीरे-धीरे वे लोगों के विवाद-झगड़ों का निपटारा भी करने लगे। ऐसे काम भी करने लगे जो राज सत्ता यानी शासन के हिस्से में आते थे। ऐसे कामों से उनकी लोकप्रियता बढ़ी। उनके कल्याणकारी कामों के तिलिस्म में न केवल गरीब-अभावग्रस्त और कम पढ़ी-लिखी जनता फंसी, बल्कि उनका जादू अपेक्षाकृत संपन्न और शिक्षित लोगों पर भी चला, जो जीवन की विविध जटिलताओं, सामाजिक-मानसिक समस्याओं में उलझे हुए हैं।

इस तरह ये अपने अनुयायी बढ़ा कर सामाजिक वैधता हासिल करते हैं, और उसके बल पर राजनीतिक संरक्षण हासिल करने में समर्थ हो जाते हैं। बाबाओं को राजनीतिक संरक्षण देने के लिए कोई भी राजनीतिक दल पाक-साफ नहीं है। माना जाता है कि राजनीतिक पार्टियां अपना काला धन खपाने-छिपाने के लिए भी बाबा लोगों का इस्तेमाल करती हैं। चूंकि बाबाओं के पास अनुयायियों की अच्छी-खासी संख्या होती है, इसलिए राजनीतिक दलों

के लिए वे वोट बैंक का भी काम करते हैं। किसी बात पर आंख मूंद कर विश्वास करने की प्रवृत्ति आज की स्मार्टफोन जेनरेशन से तर्कहीन काम तक करा सकती है। इस वर्ग के लोग आंखें मूंद कर दूसरों का अनुसरण करते हैं, और स्वविवेक का इस्तेमाल करके निर्णय नहीं ले रहे हैं। किसी काम को सिर्फ इसलिए करते हैं, क्योंकि वह सालों से होता आ रहा है, या उसे बहुत सारे लोग कर रहे हैं, और कभी नहीं सोचते कि उसकी उपयोगिता क्या है। दूसरे शब्दों में कहें तो ऐसे लोग सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और भावनात्मक अंधविश्वासों में जकड़े होते हैं।

इन लोगों का आईक्यू बेहद कम होता है, और इन्हें बेहद आसानी से प्रभावित किया जा सकता है। ये रैशनली नहीं सोचते, पर इमोशनली बेहद चार्ज्ड होते हैं। इनके दिल में आसानी से किसी चीज के लिए लगाव या नफरत पैदा की जा सकती है, और ऐसा होने पर ये किसी भी हद तक जा सकते हैं। आंख मूंद कर किया गया विश्वास न सिर्फ इनके लिए, बल्कि दूसरों के लिए भी घातक साबित होता है। कबीर की शिक्षाओं का निचोड़ यही है कि हर तथ्य पर सवाल उठाएं। जब तक खुद उसे परख न लें, तब तक उस पर विश्वास न करें। दार्शनिक प्लूटो ने भी यही कहा है कि शासक हमेशा अनबायस्ड व्यक्ति को ही होना चाहिए। दुर्भाग्य की बात है कि आज बहुत सारे लोग भीड़ का अनुसरण करने की मानसिकता से ग्रस्त हैं।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 04-07-24

हाथरस हादसे के सबक

संपादकीय

हाथरस में बाबा नारायण साकार के सत्संग में मची भगदड़ में 120 से भी ज्यादा आस्थावान लोगों की मौत दर्दनाक तो है ही, यह हमारे तंत्र और समाज के सभी स्तरों पर आत्मचिंतन का अवसर भी है। विडंबना देखिए, जिन बाबा के दर्शन करने और प्रवचन सुनने आए इतने श्रद्धालु अपनी जान से हाथ धो बैठे, कई सारे जख्मी होकर अस्पतालों में पडे हैं, वह हादसे के घंटों बाद तक लापता रहे, जबकि उन्हें घायलों की सेवा में जुटना चाहिए था। बहरहाल, संतोष की बात है कि राज्य के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने हादसे के शिकार लोगों के परिजनों व घायल सत्संगियों से मिलकर उनके आहत मन पर मरहम रखने का काम किया है और इस घटना की न्यायिक जांच कराने की घोषणा की है। जो ब्योरे हैं, वे बताते हैं कि हादसे की वजह भी चिर-परिचित है और नारायण साकार के सत्संग में जुटी भीड़ की प्रकृति भी, मगर उसके ठीक-ठीक कारणों को जानने के लिए न्यायिक जांच के नतीजों का इंतजार करना होगा। आशा है, यह जांच जल्द पूरी होगी और इसमें जिम्मेदारियां भी तय की जाएंगी।

दुर्योग से ऐसे त्रासद मौकों पर भी सियासत अपनी निर्ममता नहीं छोड़ती। अभी हाथरस हादसे के सभी मृतकों की शिनाख्त भी नहीं हो पाई थी कि इस पर राजनीतिक आरोप-प्रत्यारोप शुरू हो गए। यह पीड़ादायक है। इसलिए पहला सबक तो हमारे राजनीतिक वर्ग को ही सीखने की जरूरत है कि कई बार मर्यादित मौन ज्यादा अभिव्यंजित होती है। दूसरा सबक हमारे शासन-तंत्र के लिए है कि वह स्थानीय प्रशासन को कैसे ज्यादा से ज्यादा संवेदनशील बनाए? भगदड़ की ऐसी घटनाएं लगातार और देश के लगभग सभी हिस्सों में घटती रही हैं, मगर इनके दोषियों को सजा दिए जाने की कोई नजीर याद नहीं आती और जब ऐसी कोई नजीर ही याद न रहे, तो लापरवाही पर लगाम कैसे लगेगी? ऐसा नहीं कि हमारे तंत्र में सामर्थ्य नहीं। करोड़ों की भीड़ वाले कुंभ मेले सुचारू रूप से आयोजित हो सकते हैं, तो फिर हजारों की भीड़ के लिए व्यवस्था बनाने में क्या दिक्कत हो सकती है? सवाल प्राथमिकता और पेशेवर कार्यशैली की है। हमारे तंत्र में आज भी पेशेवराना कौशल की कमी है।

देश में ऐसे कई उदाहरण मौजूद हैं कि यदि ईमानदारी से सबक सीखे जाएं, तो जान-माल की पूरी हिफाजत हो सकती है। साल 2004 में आई सुनामी से सीखा गया सबक इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। हमने पड़ोसी देशों के साथ मिलकर एक ऐसा सफल तंत्र खड़ा किया है, जिसके कारण अब चक्रवाती तूफान के आने से पहले ही हम लाखों लोगों को तटीय इलाकों से सुरक्षित स्थान पर ले जा पाते हैं। वैसी ही कोई व्यवस्था हाथरस जैसे आयोजनों के लिए अनिवार्य बनाई जानी चाहिए। यह हादसा संत समाज के लिए भी एक सबक है कि वे अपनी टोली में घुस आए अवांछित तत्वों की पहचान कर उनसे भोले-भाले आस्तिकों को सतर्क करें। यह छिपी हुई बात नहीं है कि धर्म के क्षेत्र में चढ़ावे के अर्थशास्त्र ने कई धनलोलुपों की इसमें घुसपैठ करा दी है। धार्मिक आयोजनों में बढ़ता आडंबर प्रशासन के आगे लगातार चुनौतियां बढ़ाता जा रहा है और आस्था एक ऐसा भावनात्मक मसला है कि कई बार प्रशासनिक अधिकारी चाहते हुए भी सख्ती करने से बचते हैं, ऐसे में धर्म-ध्वजा संभालने वाले लोगों की भी जिम्मेदारी बनती है कि वे शासन और तंत्र की मदद करें, तभी किसी सत्संग को कोहराम में बदलने से बचाया जा सकेगा।

Date: 04-07-24

भारतीय अदालतों पर मुकदमों का बोझ बढ़ाती लंबी जिरह

राहुल मथान, (साइबर विशेषज्ञ)

अपनी किताब द कोर्ट ऑन ट्रायल में अपर्णा चंद्रा, सीतल कलंत्री और विलियम हबर्ड ने भारतीय सुप्रीम कोर्ट के प्रदर्शन का आकलन करने के लिए डेटा-संचालित दृष्टिकोण अपनाया है। शीर्ष अदालत के दस लाख से भी अधिक मामलों के डेटा-सेट का उपयोग करते हुए इन तीनों ने कई सवालों का उत्तर खोजने का प्रयास किया है। मसलन, क्या हमारी शीर्ष अदालत वास्तव में 'जनता का न्यायालय' है; क्या कुछ व्यक्तियों (बड़े नामचीन

वकीलों) का इसके फैसलों पर ज्यादा असर है; क्या रोस्टर-मास्टर के तौर पर प्रधान न्यायाधीश मनपसंद पीठ को अहम मुकदमों को सौंपने की शक्ति के जरिये अपना प्रभाव बढ़ाते हैं; और क्या सेवानिवृत्ति के बाद नियुक्ति का वादा किसी न्यायाधीश के कार्यकाल के अंतिम दिनों के न्यायिक निर्णयों को प्रभावित कर सकता है?

इस किताब की कुछ बातों से मैं सहमत नहीं हूं। जैसे, सुप्रीम कोर्ट जनता की अदालत है या नहीं, इसके आकलन के लिए अपनाई गई इनकी पद्धति। लेखक त्रयी ने इस आकलन के लिए मुकदमों को स्वीकृत किए जाने के आंकड़ों को देखा और तर्क दिया कि यह सचमुच लोगों की अदालत है, क्योंकि सुबूत बताते हैं कि न्यायालय ऐसे अधिक मामलों को स्वीकार करता है, जिनमें जीतने की संभावना नहीं होती। मेरी नजर में इस निष्कर्ष पर पहुंचने का यह पेचीदा तरीका है। सरल रास्ता यह होता कि विशेषाधिकार से रहित लोगों द्वारा दायर मुकदमों की संख्या गिनी जाती, और फिर उनमें से किस अनुपात में मुकदमे स्वीकार किए गए, इसका आकलन किया जाता।

हालांकि, इसमें कई जानकारियां ऐसी हैं, जो काफी उपयोगी हैं। उदाहरण के लिए, सुप्रीम कोर्ट में लंबित मामलों के आंकडे तो आंखें खोलने वाले हैं। शीर्ष अदालत में दर्ज सभी मामलों में से लगभग 40 प्रतिशत मुकदमे पांच साल से अधिक समय से लंबित हैं, तो वहीं 7.7 फीसदी मामले 10 से भी अधिक वर्षों से लंबित पड़े हैं। हम सब भारतीय कानून प्रणाली की लेट-लतीफी से बखूबी वाकिफ हैं, पर यह कई लोगों के लिए एक झटका हो सकता है कि देश की सबसे ऊंची अदालत भी कुछ मामलों में उच्च न्यायालय जितना लंबा समय लेती है!

ये तीनों लेखक बैकलॉग समस्या का समाधान भी सुझाते हैं। उनके मुताबिक, मुकदमों में जिरह पर अनुचित जोर देरी का बड़ा कारण है। जाहिर है, हम मौखिक जिरह से बचते हुए लिखित प्रस्तुतियों से भी फैसले तक पहुंच सकते हैं, खासकर वाणिज्यिक विवाद के मामलों में, जहां निर्णय अक्सर तथ्य की खोज मात्र होता है। ये कुछ ऐसी कमियां हैं, जिनके हम सब इतने अभ्यस्त हो गए हैं कि हम मानते हैं, यह न्यायिक प्रणाली की अपरिहार्य विशेषता है। यह एक गहरी धारणा है कि जब तक वकील मौखिक जिरह नहीं करेंगे, तब तक न्याय ही नहीं मिलेगा।

पिछले महीने, अमेरिका में एक अपीलीय न्यायाधीश के साथ मुझे सप्ताहांत बिताने का मौका मिला। उस दौरान हमने भारतीय न्यायिक प्रणाली के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की और यह जानने की भी कोशिश की कि अमेरिका में काम करने के तरीके से यह कैसे भिन्न है? मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि कई मामलों में अमेरिकी न्यायाधीश केवल लिखित दलीलों की बिना पर ही मुकदमों का फैसला करते हैं। मौखिक जिरह के लिए भी वहां एक सख्त समय-सीमा की व्यवस्था है। आम तौर पर छोटे मामलों में हर पक्ष के लिए 10 मिनट से अधिक नहीं, बल्कि सबसे महत्वपूर्ण (मृत्युदंड) मामलों में हरेक पक्ष को 30 मिनट तक मौखिक जिरह की अनुमति होती है।

जब मैंने उनसे पूछा कि सिर्फ 20 मिनट की मौखिक जिरह के बाद किसी मुकदमे का फैसला करते हुए उन्हें कैसा लगता है, तो उनका जवाब था, लगभग हरेक मामले में उनका निर्णय काफी हद तक लिखित दलीलों पर आधारित होता है। जब वकील मौखिक जिरह करते हैं, तब वह उस समय का उपयोग उन मुद्दों पर स्पष्टीकरण पाने के लिए करती हैं, जो लिखित प्रस्तुतियों में तफसील से शामिल नहीं किए गए होते।

अपने देश में 30 मिनट निराशाजनक रूप से कम लग सकते हैं। लेकिन यदि यह अमेरिका में काम कर सकता है, तो कोई वजह नहीं कि यहां यह काम न करे। न्यायिक दक्षता बढ़ाने के लिए भारतीय अदालतों में मौखिक जिरह पर एक समय-सीमा लगाने की कोशिश होनी चाहिए।